भारतीय समाज में बंधुआ मजदूरी का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अंजना वर्मा

सहायक आचार्य समाजशात्र

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय अलवर (राज)

शोध सांराश: भारत में बंधुआ मज़दूरी व्यवस्था की उत्पत्ति देश की विशेष सामाजिक–आर्थिक संस्कृति के कारण हुई है। भारत में प्रचलित विभिन्न अन्य सामाजिक बुराइयों की तरह, बंधुआ मज़दूरी भी हमारी वर्ण–व्यवस्था की एक उपशाखा है। समाज में कमजोर आर्थिक और सामाजिक स्थिति होने के कारण अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों को गाँवों में जमींदार या साहूकार उन्हें अपने श्रम को नाममात्र के वेतन या बिना किसी वेतन के बेचने को मजबूर करते हैं। अंग्रेजों द्वारा लागू की गई भूमि बंदोबस्त व्यवस्था ने बंधुआ मज़दूरी को आधार प्रदान किया। अंग्रेजों ने भू–राजस्व की शोषणकारी व्यवस्था को इस प्रकार अपनाया कि अपनी भूमि पर खेती करने वाला किसान अब स्वयं उसका किराएदार हो गया। निर्धारित समय पर भू–राजस्व न चुका पाने पर वह बंधुआ मज़दूरी करने के लिये विवश हुआ।

भारतीय समाज एक परम्परागत समाज हैं, जो सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारकों के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण, पश्चिमीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी के प्रसार, शिक्षा के प्रसार, लोकतांत्रिक शासन प्रणाली आदि कारकों के प्रभाव के कारण परम्परागत एवं ग्रामीण परिवेश प्रधान भारतीय समाज यांत्रिक एकता से सावयवी एकता आधारित आधुनिक एवं शहरी परिवेश की तरफ अग्रसर हो रहा है। लेकिन परिवर्तन की यह प्रक्रिया इतनी सहज एवं सरल नहीं है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है चूँकि समाज भी प्रकृति का अंग है। अतः निश्चित है कि समाज में भी परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है। प्रो. ग्रीन लिखते हैं ''सामाजिक परिवर्तन इसलिए होता है, क्योंकि प्रत्येक समाज असंतुलन के दौर से गुजर रहा है। कुछ व्यक्ति सम्पूर्ण संतुलन की इच्छा रख सकते हैं तथा कुछ इसके लिए प्रयास भी करते हैं।''

परिवर्तन की इस प्रक्रिया में भारतीय समाज एक ऐसी मध्यावस्था में है जिसे न तो पूरी तरह परम्परागत समाज कहा जा सकता है तथा न ही आधुनिक। वर्तमान भारतीय समाज अनेक सामाजिक–सांस्कृतिक संघर्षों एवं विरोधाभासों से गुजर रहा है।

अमेरिकी विद्वान फ्रेडरिग्स ऐसे समाजों को समपार्श्वीय समाज कहते हैं जो रूपान्तरण की प्रक्रिया से गुजर रहे हों जिनमें परम्परागत तथा आधुनिक व्यवस्थाएँ साथ–साथ चल रही हों।

मुख्य शब्दः बंधुआ मजदूर, बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम, आधुनिक, आर्थिक–सामाजिक कारण, शोषण, सरकारी एवं गैर सरकारी संगठन।

सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा भारतीय समाज एक ऐसे जटिल यथार्थ को प्रस्तुत करता है जिसमें एक ओर परम्परागत मूल्यों, विश्वासों एवं अवधारणाओं को मानने वाली अभिभावक संस्कृति तथा दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा प्राप्त धर्मनिरपेक्ष एवं प्रगतिशील मूल्यों एवं दृष्टिकोणों वाली संस्कृति विद्यमान है, जो कि क्रमशः परम्परागत भारतीय समाज तथा आधुनिक भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करती हैं। हमारे विचार, ज्ञान, मूल्य, नैतिकता, धर्म, कला इत्यादि में तेजी से बदलाव आया है और पिछले कुछ दशकों में नवाचार एवं विकास की योजनाओं के फलस्वरूप सामाजिक ढाँचा जिस तरह से चरमराया है उसको सहेजने की जरूरत महसूस हुई, क्योंकि परिवर्तनों का दूरगामी प्रभाव सामाजिक संरचना के विस्तार एवं सामाजिक व्यवस्था की प्रकार्यात्मकता पर पड़ता है।

आज हम आधुनिकता से हटकर उत्तर आधुनिकता की बात कर रहे हैं, जो मानवता की बात करता है, भावना को प्रधानता देता है, सहयोग की बात करता है, समूहता की सिफारिश करता है जबकि दूसरी ओर एक अमानवीय प्रथा आज भी हमें इस समाज में देखने को मिलती है। जी हाँ, अमानवीय प्रथा.... बंधुआ मजदूर प्रथा।

बंधुआ मजदूर का मामला आज भी एकदम जीवंत और सशक्त है। आज भी बेतहाशा प्रचार और धूमधाम के साथ देश में जब किसी परियोजना का उद्घाटन हो रहा होता है। किसी जंगल में, किसी मुलायम या कठोर धरती के किसी हिस्से पर कोई अभागा परिवार गुलामी की जंजीर में कसता जा रहा होता है। यह रोग काफी पुराना है और आज भी काफी

मजबूत रोग है। किसी भी कानून या अध्यादेश ने बंधुआ मजदूरों की मदद नहीं की। जब तक बंधुआ मजदूरों में चेतना नहीं जाग्रत होती और वे एकजुट होकर खड़े नहीं जा जाते। कोई भी उन्हें आजाद जिन्दगी बिताने का हक नहीं देगा।

बंधुआ मजदूर प्रथा भारत की ज्वलंत समस्याओं में से एक है। 1975 में राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश के जरिए बंधुआ मजदूर प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया। लेकिन आज भी बिना किसी रोक–टोक के और तेजी से जारी की कुछ राज्य इस बात से इंकार नहीं करते हैं कि उनके यहाँ बंधुआ मजदूर प्रथा अभी भी जारी है।

भारत सरकार ने 30 अक्टूबर, 1980 को एक बयान में ऐलान किया कि अब तक 1,20,500 बंधुआ मजदूरों को आजाद किया जा चुका है। लेकिन उनको महज आजाद करा देने से ही केन्द्र सरकार की जिम्मेदारी समाप्त नहीं हो जाती। अपने पुरखों की तरह इन अभागों को भी अपने गाँव छोड़ने पड़ेंगे, क्योंकि जमीन के मालिक किसी आजाद बंधुआ मजदूर को काम नहीं देंगे। इन्हें ठेका मजदूरों के रूप में नये सिरे से बंधुआ बनने के लिए दूसरे राज्यों में जाना ही होगा। आज तक आजाद किए गए बंधुआ मजदूरों का इतिहास यही रहा है।

'बंधुआ मजदूर प्रथा' और 'बंधुआ मजदूर' दो भिन्न संबोध हैं। बंधुआ मजदूर प्रथा से तात्पर्य है– कर्ज देनदार और कर्ज लेनदार के मध्य संबंध । कर्ज लेनदार अपनी आर्थिक अनिवार्यताओं की पूर्ति हेतु धनी लोगों से ऋण लेता है। दोनों के मध्य एक समझौता होता है कि जब तक लिया गया कर्ज चुकता नहीं होगा, तब तक लेनदार, देनदार के घर, खेत या कार्य स्थलों पर बताये अनुसार कार्य करेगा। कार्य उसके द्वारा अथवा उसके परिवार के किसी सदस्य द्वारा किया जायेगा। कार्य निश्चित या अनिश्चित हो सकता है एवं बंधुआ मजदूर से तात्पर्य–''ऐसे व्यक्ति से है जिससे कर्ज देनदार द्वारा बलात् श्रम बिना किसी भुगतान से करवाया जाता है। बंधुआ मजदूर ठेके के मजदूर से भिन्न होता है।''

बंधुआ मजदूर की परिभाषा बंधक श्रमिक प्रथा समाप्ति अधिनियम, 1976 में ही की गई है। इस अधिनियम के अन्तर्गत सांगड़ी, अधियाभार, बारामासिया, बसैया, हाली, हरवाई एवं कामिया आदि श्रेणी के मजदूरों को बंधुआ मजदूर माना गया है।

मोटे रूप में बंधुआ मजदूर ऐसे लोगों को माना जाता है जो किसा लेनदारी, कर्ज के एवज में देनदार के यहाँ खुद मजदूरी करता है अथवा उसके परिवार के किसी आश्रित व्यक्ति से ऐसी मजदूरी करवा। इस मजदूरी की कोई निश्चित अवधि नहीं होती है। ऐसी मजदूरी या तो बिना किसी पगार के की जाती है या अल्प पगार के। यह देखने में आया है कि अपने पुरखों के द्वारा लिये गये कर्ज के लिए पीढ़ी दर पीढ़ी देनदार के यहाँ मुफ्त में या थोड़ी–सी मजदूरी की राशि लेकर मजदूरी की जाती है। ऐसी मजदूरी करने वालों को कोई दूसरा रोजगार अपनाने के लिए अथवा कहीं दूसरी जगह जाकर रोजगार ढूँढ़ने की स्वतंत्रता नहीं होती। इसी प्रकार से ऐसे मजदूर देनदार के यहाँ न केवल अपनी पीढ़ी के लिए बल्कि अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए मजदूरी करने हेतु बंधे हुए रहते हैं। मोटे रूप से ऐसे मजदूर को बंधुआ मजदूर माना जाता है।

भारत में विभिन्न प्रांतों में बंधुआ मजदूरों को भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है। जो विभिन्न कार्य क्षेत्रों में कार्यरत हैं। राजस्थान में बंधुआ मजदूर, वर्तमान में ईंट–भट्टों में देखने को मिलते हैं जो राजस्थान में ही या पड़ोसी प्रान्तों, जैसे– हरियाणा, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में बंधुआ मजदूर के रूप में ईंट भट्टों में कार्यरत हैं। भारत को आजाद हुए 67 वर्ष हो चुके हैं। लेकिन आज भी आधुनिक समाज में यह अमानवीय प्रथा हमारे सामने यथावत खड़ी है। जैसे समाज में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही है वैसे ही इस प्रथा में कुछ परिवर्तन देखने को मिले हैं। अन्य प्रदेशों की तरह राजस्थान में भी सांगड़ी और अन्य तरह से बंधुआ मजदूर जीवित हैं। नेशनल सैम्पल सर्वे गाँधी, शांति प्रतिष्ठान एवं राष्ट्रीय श्रम संस्थान के अनुसार आज भी राजस्थान के गंगानगर धौलपुर, भरतपुर, बूंदी, नागौर, सवाईमाधोपुर, झालावाड़, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, पाली, जोधपुर, बाँसवाड़ा, भीलवाड़ा, डूंगरपुर, जैसलमेर, जयपुर, झुन्झुनूं तथा सीकर सहित अन्य जिलों में भी बंधुआ मजदूर नरकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

राज्य में काफी संख्या में बंधुआ मजदूर होने पर भी राज्य सरकार इसके प्रति पूरी तरह उदासीन और संवेदनशून्य है। जबकि बंधुआ मजदूरों की खोज, मुक्ति और पुनर्वास का कार्यक्रम बीस सूत्रीय कार्यक्रम के अंगों में से एक।

उलटे जिला प्रशासन और राज्य सरकार यह साबित करने में जुटे हैं कि अब राज्य सरकार में एक भी बंधुआ मजदूर नहीं है। जो थे उनका पुनर्वास कर दिया गया।

ईंट भट्टों में कार्यरत बंधुआ मजदूरों में से अधिकांश अनुसूचित जाति व कमजोर तबके के हैं।

ईंट भट्टों के निर्माता तो रेत से सोना पैदा करते हैं परन्तु इसके लिए ईंट भट्टों के मजदूरों को भट्टी में गलना पड़ता हैं। जयपुर शहर के आस–पास और सीकर जिले में जगह–जगह ईंट भट्टे बने हुए हैं। यहाँ रेत से ईंट तैयार होती है और

शहरों में लाई जाती है। शहर में नित नये आधुनिक डिजाइन के बनते मकान और अट्टालिकाओं के नीचे पसीना बहाते और नींव का पत्थर का काम करते हैं ये ईंट भट्टा मजदूर।

बंधुआ मज़दूरी का स्वरुप

- बंधुआ मज़दूरी का सबसे अधिक प्रचलन कृषि क्षेत्र में है। परंपरागत रूप से भूमि का स्वामित्व उच्च सामजिक–आर्थिक स्तर वाले लोगों के पास है, जबकि निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर वाले लोगों के पास भूमि बहुत कम या न के बराबर होती है। परिणामस्वरूप ऐसे लोगों को विवश होकर बंधुआ मजदूर के रूप में दूसरे के खेतों में कार्य करना पड़ता है।
- वस्तुतः बंधुआ मज़दूरी केवल कृषि के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि शहरों में विभिन्न क्षेत्रों जैसे–खनन, माचिस निर्माण की फैक्ट्रियाँ और ईंट भट्टे आदि क्षेत्रों में व्यापक रूप से फैली है।
- शहरों में प्रवासी मजदूरों को अपने श्रम को बहुत कम या बिना वेतन के बेचने को मजबूर होना पड़ता है। शहरों में छोटे स्तर की इकाईयों जैसे– पटाखे निर्माण की फक्ट्रियाँ, टेक्सटाइल उद्योग, चमड़ा उद्योग, चाय की दुकानों, होटलों,ढाबों आदि में तमाम प्रवासी मजदूर कार्य करते हुए दिख जाते हैं।
- इतना ही नहीं समय के साथ बंधुआ मज़दूरी ने अपना रूप परिष्कृत कर लिया है, जिसे विशेषज्ञों द्वारा आधुनिक दासता की संज्ञा दी गई है।

बंधुआ मजदूरी के कारण

बंधुआ मजदूर प्रथा की उत्पत्ति तथा विकास का मुख्य कारण आर्थिक है, लेकिन सामाजिक एवं धार्मिक कारण तथा विभिन्न रीति–रिवाज भी इसको बढ़ावा देते हैं।

➢ आर्थिक कारण

- आधारभूत आवश्यकताओं जैसे– रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति न हो पाना।
- कृषि प्रधान देश होने के बावजूद सभी के पास जीवननिर्वाह योग्य भूमि का न होना।
- आदिवासी क्षेत्र में रहने वाले लोगों की आय का मुख्य स्रोत वन उत्पाद होते हैं। उपलब्ध वन उत्पादों की कीमत का कम होना।
- बाढ़ व सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं का आना।
- मुद्रास्फीति के कारण निरंतर कीमतों का उच्च पाया जाना।

निर्धनता, जीवनयापन के लिए कार्य, भूमि का परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति में अपर्याप्त होना, ग्रामीण तथा नगरीय लोगों के लिए लघु ऋणों की कमी, प्राकृतिक जलवायु का शुष्क होना आदि सम्मिलित हैं। खड़ी फसलों का नष्ट होना, प्लेग और अन्य बीमारियाँ जो मानव तथा पशुओं की मृत्यु को बढ़ाती है, वर्षा की कमी, कुओं का सूखना, जंगलों के उत्पाद से होने वाली अल्प आय, आदि।

➢ सामाजिक कारण

- अशिक्षा व साधनहीनता के कारण श्रमिकों का ऋणजाल में फँस जाना।
- बेहतर जीवन जीने की इच्छा के कारण बिना किसी ठोस रणनीति के शहरों की ओर प्रवास, जिससे ऐसे प्रवासी लोगों को सेवायोजक की मनमानी शर्तों को मानने के लिये विवश होना पड़ता है।
- कार्यकुशलता व दक्षता का अभाव भी बंधुआ मज़दूरी का कारण बनता है।

विभिन्न अवसरों पर होने वाला भारी व्यय, जैसे– विवाह, मृत्यु, बच्चों का जन्म आदि। जाति आधारित विभिन्नता, समाज कल्याण योजनओं की कमी, भूख और बीमारी। अ–अनिवार्य और असमान शैक्षणिक व्यवस्था, गाँव के ही कुछ लोगों द्वारा किया जाने वाला शोषण गाँव के लोगों का न केवल रोजगार के लिए प्रवसन बल्कि प्रभावशाली लोगों से सुरक्षा के कारण आदि सम्मिलित हैं।

➢ धार्मिक कारक

- वर्ण और जाति व्यवस्था की संस्कृति का विद्यमान होना।

उद्देश्य

1. निम्न वर्ग के लोगों का आज भी आजाद देश में किस प्रकार शोषण किया जा रहा हैं।
2. केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार के प्रयास इस दिशा में कितने सफल।
3. बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम 1976 का इस सामाजिक समस्या पर क्या प्रभाव पड़ा। 4. अधिनियम में उपबन्धित किये गये मुक्ति एवं पुनर्वास संबंधी प्रावधान कितने सार्थक रहे।
5. बंधुआ मजदूरी का जाति/वर्ग विशेष से क्या संबंध है।

शोध अध्ययन में सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा चलाये जाने वाले कायक्रमों का निष्कर्ष तथा इस दिशा में सरकारी कर्मचारी/अधिकारियों एवं राज्य सरकार के नुमाइन्दों का रवैया भी शामिल करने का प्रयास किया गया है।

शोध पद्धति – उपकल्पना

1. बंधुआ मजदूर तथा अनुसूचित जाति/जनजाति/अन्य निम्न–जातियों के मध्य सीधा संबंध है।
2. बंधुआ मजदूर निरक्षर हैं। इन्हें बंधुआ मजदूर उन्मूलन अधिनियम 1976 के बारे में जानकारी नहीं है। अतः बंधुआ मजदूर अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ हैं।
3. बंधुआ मजदूर अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ हैं।
4. कर्ज लेने के कारण परिवार के लिए भोजन, शादी–विवाह के कर्ज, इलाज और पिछले कर्ज के भुगतान की व्यवस्था करना तथा अन्य सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करना है।

बंधुआ मजदूरों की पृष्ठभूमि से ज्ञात होता है कि ये सभी निम्न जातियों के सदस्य हैं जो सामाजिक संस्तरण में सबसे निचले स्तर पर हैं। औद्योगीकरण एवं मशीनरीकरण के कारण इनका परम्परागत व्यवसाय समाप्त हो गया और इन्होंने ईंट–भट्टों में पेशगी लेकर कार्य करना शुरू किया और बंधुआ बन गए।

बंधुआ मजदूरों की आर्थिक स्थिति दयनीय है तथा ये परिवार सहित बंधुआ हैं जो कार्यस्थल पर ही मालिकों द्वारा प्रदत्त अधपक्के मकानों अथवा कच्चे घरों में रहते

अधिकांश बंधुआ मजदूर निरक्षर हैं जिसके कारण हिसाब ठीक से नहीं समझ पाते हैं तथा मालिक इसी का फायदा उठाकर इनकी और टूटत दिखाते रहते हैं। ये जल्दी कर्ज उतारने के लिए अपने बच्चों से भी काम करवाते हैं। अतः बाल बंधुआ मजदूर भी देखे जाते हैं। बंधुआ मजदूरों के मनोरंजन का कोई साधन नहीं है। अधिकांश बंधुआ मजदूर (80 प्रतिशत) मांसाहारी हैं तथा शराब का सेवन करते हैं। ईंट–भट्टों में मिट्टी से संबंधित कार्य होता है जो सांस के साथ फेफड़ों में जाती है, अतः बंधुआ मजदूर बीमार हो जाते हैं तथा मालिकों द्वारा इनके स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखा जाता है।

लगभग सभी बंधुआ मजदूर बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं। इनका मानना है कि इसके बहाने उन्हें थोड़ा विश्राम मिल जाता है। बंधुआ मजदूर 8–12 घंटे तक यह सोचकर काम करते हैं कि कर्ज जल्द उतर जाए।

इस प्रथा के प्रति समाज के अन्य सदस्यों का नकारात्मक पक्ष उभरता है। बंधुआ मजदूर समाज से अलगाव महसूस करते हैं तथा इनके बच्चों के रिश्तों में परेशानी आती है। बड़ी–बड़ी उम्र के युवक–युवतियाँ कुँवारे रह जाते हैं।

बंधुआ मजदूरों को उनके परिश्रम का यथोचित लाभ नहीं मिलता है। भट्टा मालिकों के व्यवहार में बंधुआ मजदूरों के प्रति समय के साथ परिवर्तन आया है। अब वे मजदूरों से पशु सम्मत व्यवहार नहीं करते, ना ही महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार करते हैं। लेकिन जिन बंधुआ मजदूरों पर कर्ज अधिक है उनके परिवार के साथ मालिकों का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण नहीं है। कर्ज के बोझ से दबे होने के कारण बंधुआ परिवार मालिकों का विरोध भी नहीं कर सकतें। प्रत्यक्ष रूप से बंधुआ मजदूरों पर कोई पहरेदारी नहीं है। विशेष अवसरों पर इनको अपने घर जाने की अनुमति है, लेकिन पूरे परिवार का एक साथ नहीं।

बंधुआ मजदूरों को बंधुआ मजदूरी (उन्मूलन) प्रथा अधिनियम 1976 बारे में जानकारी नहीं है।

बंधआ मजदूरों के मुक्ति एवं पुनर्वास संबंधी कार्यक्रमों में सरकारी कर्मचारी, अधिकारियों का रवैया उदासीन है। गैर सरकारी संस्थाएँ इस दिशा में प्रयासरत हैं। कुछ गैर सरकारी संस्थाओं ने बंधुआ मजदूरों को मुक्त करवाया है लेकिन पुनर्वास करने में पर्याप्त सफलता हासिल नहीं कर पाये। बंधुआ होने के कारणों में आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना महत्त्वपूर्ण है। इन मजदूरों ने घर खर्च के लिए, मकान निर्माण के लिए, विवाह के लिए, मृत्युभोज, पुत्र जन्मोत्सव, बीमारी के इलाज या अन्य सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए कर्ज लिया था। निर्धारित समय में कर्ज चुकता नहीं हो पाने के कारण ये बंधुआ बना लिये गये।

इस आनुभाविक अध्ययन में यह तथ्य विषेश रूप से उभर कर आया है कि बंधुआ मजदूरी का संबंध आर्थिक स्तर से कम बल्कि जाति समूह से अधिक है।

इस प्रथा को परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में देखें तो प्रतीत होता है कि कार्ल मार्क्स का शोषण का सिद्धान्त यहाँ लागू नहीं होता, क्योंकि मार्क्स शोषण का आधार केवल आर्थिक मानते हैं। यदि शोषण का आधार आर्थिक होता तो सभी गरीबों का शोषण होता जबकि यहाँ केवल जाति विशेष (अनुसूचित जाति) के मजदूरों का ही शोषण हो रहा है। मार्क्स का मानना है कि पूँजीपतियों और श्रमिकों में सीधा संबंध हैं। जबकि यहाँ श्रमिकों का द्विस्तरीय शोषण हो रहा है–एक तो भट्टा मालिकों द्वारा दूसरा जमादार (मध्यस्थ) द्वारा।

यहाँ व्यावसायिक गतिशीलता भी प्रतीत होती है, क्योंकि किसी भी बंधुआ मजदूर का पारम्परिक व्यवसाय यह नहीं रहा है लेकिन व्यावसायिक गतिशीलता के बावजूद भी इन्हें शोषण से मुक्ति नहीं मिली है।

अशिक्षा और बंधकत्व में सीधा संबंध देखने को मिलता है लेकिन यह तथ्य खोजना टेढ़ी खीर है कि अशिक्षा से बंधकत्व हैं या बंधकत्व से अशिक्षा।

सामाजिक यथार्थ और प्रशासनिक यथार्थ में भी अन्तर देखने को मिलता है, क्योंकि प्रशासन इस बात को स्वीकार नहीं करता कि वर्तमान में भी बंधुआ मजदूर हैं। वास्तविकता भी है, क्योंकि किसी बंधुआ मजदूर को बंधुआ प्रमाणित करना आसान कार्य नहीं है। यहाँ तक कि बंधुआ मजदूर स्वयं को बंधुआ नहीं मानता। प्रमाणित कर भी दिया जाये तो यह तथ्य प्रशासन द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता। मानवीय दृष्टिकोण व मानवाधिकारों के दृष्टिकोण से भी इस प्रथा में परिर्वतन दृष्टिगोचर होता है। अतः सामाजिक यथार्थ और प्रशासनिक यथार्थ में संगतता प्रतीत नहीं होती। जबकि इनके द्वारा किया जाने वाला कार्य इनका परम्परागत व्यवसाय नहीं है।

बंधुआ मजदूरों की खोज, मुक्ति एवं पुनर्वास कार्यक्रमों को सफल बनाने एवं प्रशासन तथा स्वयंसेवी संस्थाओं की इस कार्य में भागीदारी बढ़ाने के लिए कुछ समीचीन सुझाव भी प्रस्तुत हैं–

1. इस कार्यक्रम को किसी भी मंत्रालय/विभाग का कार्यक्रम समझे जाने की अपेक्षा विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के तालमेल की आवश्यकता है।
2. सामाजिक वातावरण और सामाजिक संरचना जो गाँवों में लम्बे समय से चले आ रहे हैं और आज भी प्रमुख रूप से ग्रामीण जीवन और अर्थव्यवस्था पर हावी हैं, अतः इनकी प्रतिबद्धता के साथ जाँच किये जाने और बदले जाने की आवश्यकता है।
3. बिचौले परजीवी की तरह कार्य करते हैं और पुनर्वास के लाभों का स्वयं लाभ उठाते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि योजनाएँ सावधानीपूर्वक तथा विवेकपूर्ण ढंग से विविध आवश्यकताओं को जोड़कर बनाई जावे और पहले से ही उपलब्ध निचली सतह पर संसाधनों को ध्यान में रखा जाये।
4. बंधुआ मजदूर जो समाज के निम्न सतह से होते हैं और जो अत्यन्त निर्धनता और अकिंचनता का प्रतिनिधित्व करते हैं, अपनी इच्छा की योजना बनवाने में असमर्थ होते हैं, जो उनके सर्वाधिक लाभकारी हों। उनके लाभ के लिए योजना बनाने में लगे संबंधित अधिकारियों पर निर्भरता पुनर्वास के वास्तविक लाभों से उन्हें वंचित रखती है। इस निर्भरता को कम किये जाने की आवश्यकता है।
5. बंधुआ मजदूर रखने वाले लोगों और विभिन्न विभागों के कर्मचारियों, अधिकारियों की बंधुआ मजदूरों के प्रति धारणाएँ बिल्कुल भी नहीं बदली हैं। जब मजदूरों को मालिकों, जमादारों द्वारा परेशान किया जाता है या अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया जाता है और जब वे पुलिस का इसकी शिकायत करते हैं तब पुलिस या संबंधित अधिकारी इनकी पात्र से जरा भी प्रभावित नहीं होते और इनकी सहायता करने से कतराता हैं। जब तक इस दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं लाया जायेगा, बंधुआ मजदूर समाज के प्रभावशाली वर्ग के लोगों के सामूहिक संगठित आकार के सामने टिक नहीं पायेंगे।

निष्कर्ष – एक ओर हम आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर आज के इस आधुनिक परिवर्तित समाज में दास प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा आज भी देखने को मिलती है। जिसमें एक वर्ग विशेष के लोग दयनीय अवस्था में अपना जीवनयापन कर रहे हैं। हालाँकि इस प्रथा में भी सामाजिक परिवर्तन के साथ परिवर्तन आया है लेकिन स्थितियाँ आमूलचूल परिवर्तित नहीं हुई हैं। अतः जरूरत है कि समाज वैज्ञानिक आज आधुनिकीकरण के इस दौर में इस प्रथा की ओर भी ध्यान दें तथा समाज के परिवर्तित परिदृश्य में इस वर्ग विशेष के लोगों को भी शामिल किया जावें।

संदर्भ सूची

1. ग्रीन, ए. डब्ल्यू : सोशियोलॉजी

2. महाश्वेता देवी, निर्मल घोष, भारत में बंधुआ मजदूर (1981)
3. आहूजा, राम : भारत में सामाजिक समस्याएँ, बंधुआ मजदूर
4. बंधक श्रमिक (उन्मूलन) अधिनियम, 1976
5. P.L. Malik : Hand Book of Labour and Industrial Law.
6. V.G. Goswami : labour Industrial Laws.